गर्माती धरती के बाबत चेतावनी

प्रवीण कुमार

पृथ्वी के तापमान में कुछ ही डिग्री का हेरफेर विश्व की जलवायु में बहुत बड़ा बदलाव ला सकता है - इतना बड़ा बदलाव जिसे पिछले 10 हज़ार सालों की अवधि में किसी ने नहीं देखा है। अगर ऐसा हुआ तो हम मानव व अनेक प्रजातियों के लिए इसे झेलना खासा मुश्किल हो जाएगा। उपलब्ध सभी प्रमाण उन कई सारी मानवीय क्रियाओं की ओर इशारा करते हैं जो पृथ्वी के वातावरण में विभिन्न गैसों का उत्सर्जन कर रही हैं। इसके कारण ग्रीन हाउस प्रभाव उत्पन्न होता है तथा पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि होती है।

ग्रीन हाउस गैसों तथा वायुमण्डल के तापमान में अभूतपूर्व वृद्धि के लिए ज़िम्मेदार ऐसी ही अन्य गैसों के उत्सर्जन में कटौती के लिए वैश्विक सहमति तक पहुंचने की मंशा से नवम्बर 2000 में एक संगोष्ठी आयोजित की गई। लेकिन संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा हेग में आयोजित यह बैठक असफल रही। यह बैठक इस सम्बंध में अप्रैल 1995 में बर्लिन में आयोजित सम्मेलन का दोहराव ही साबित हुई। हमेशा की तरह इस बार भी संयुक्त राज्य अमेरिका ही प्रमुख अभियुक्त के रूप में सामने आया। इस देश में विश्व की आबादी के केवल 5 प्रतिशत लोग रहते हैं किन्तु उत्सर्जित एक चौथाई ग्रीन हाउस गैसों के लिए यही लोग ज़िम्मेदार हैं। हेग में आयोजित बैठक में दरअसल 1997 में क्योटो (जापान) में हुए समझौतों के क्रियान्वयन सम्बंधी निर्णय लिए जाने थे। इस समझौते के तहत विकसित देशों को सन 2012 तक उत्सर्जित गैसों के उनके 1990 के स्तर से 5.2 प्रतिशत की कटौती करना थी।

पृथ्वी की सतह का तापमान-निर्धारण चहुंओर फैली हवा द्वारा तय होता है। लेकिन इस तापमान को हवा के मुख्य घटकों की अपेक्षा कुछ सूक्ष्म घटक ही सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। इनमें प्रमुख हैं कार्बन डाई ऑक्साइड, मीथेन व जलवाष्प जैसी ऊष्मा को बांधे रखने वाली गैसें।

कोयला तथा पेट्रोलियम जैसे जीवाश्म ईंधन को जलाकर मानव हर दिन लगभग 2 करोड़ टन कार्बन डाई ऑक्साइड वातावरण में छोड़ता है। एक व्यक्ति हर साल औसतन एक टन कार्बन (या चार टन CO_2) वातावरण में छोड़ता है। एक वर्ष की अवधि में तकरीबन सात गीगाटन ग्रीन हाउस गैसें वातावरण में छोड़ी जाती हैं। (एक गीगा टन = 10 करोड़ टन)। ये गैसें वातावरण में 50 से 2000 वर्षों तक रहती हैं क्योंकि इन्हें सोखने वाले महासागर जैसे प्राकृतिक साधन इन्हें धीरे-धीरे ग्रहण करते हैं। मानव द्वारा निर्मित ग्रीन हाउस प्रभाव का 50 प्रतिशत केवल कार्बन डाई ऑक्साइड द्वारा ही पैदा होता है। ऐसा इसलिए कि कार्बन डाई ऑक्साइड अवरक्त विकिरण को अपने पार नहीं जाने देती। CO_2 सूर्य के प्रकाश को तो आने देती है किन्तु पृथ्वी द्वारा उत्सर्जित अवरक्त विकिरण को रोक लेती है। वैसे यह बात इतनी बुरी भी नहीं है क्योंकि अवरक्त विकिरण के अभाव में पृथ्वी इतनी ठण्डी हो जाएगी कि इस पर जीवित रहना सम्भव न होगा। फिर भी ग्रीनलैण्ड की बर्फ के नमूने तथा वृक्षों पर पाए जाने वाले वलय बताते हैं कि प्राकृतिक रूप से कार्बन डाई ऑक्साइड को सोखने वाले स्रोतों ने औद्योगिक क्रांति से पूर्व के एक हज़ार वर्ष तक वातावरण में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा को हवा के प्रति दस लाख कणों में 250 भाग (पीपीएम, parts per million) तक ही सीमित रखा। 1955 तक यह मात्रा 320 पीपीएम हो गई थी और वर्तमान में यह 350 पीपीएम तक पहुंच गई है।

जलवायु परिवर्तन के सम्बंध में गठित अन्तर्शासकीय पैनल (आई.पी.सी.सी.) की 1990 की रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में वातावरण में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा में प्रति वर्ष 1.3 प्रतिशत की वृद्धि हो रही है। इस वृद्धि दर से सन् 2015 तक CO_2 की मात्रा 400 पीपीएम तथा सन् 2076 में 600 पीपीएम के स्तर तक पहुंच जाने की सम्भावना है।

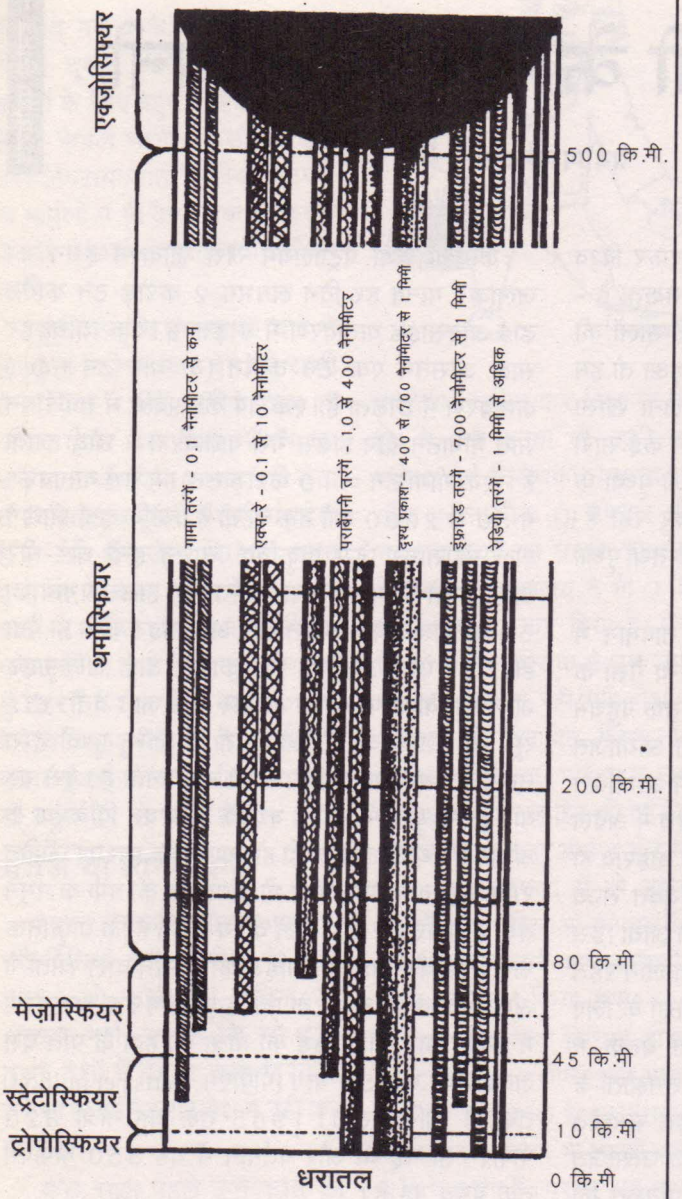

सूर्य का प्रकाश वायुमण्डल के विभिन्न स्तरों को पार कर हम तक पहुंचता है। इस प्रकाश में कई तरह की तरंगें होती हैं लेकिन सभी हम तक नहीं पहुंचतीं। वायुमण्डल के विभिन्न हिस्से उन्हें वहीं रोक लेते हैं। रेखाचित्र में वही स्थितियां दिखाई गई हैं।

वैसे इस सम्बंध में केवल कार्बन डाई ऑक्साइड ही दोषी नहीं है। हाल की गणना के अनुसार धान के खेतों तथा पशुओं की पाचन प्रक्रिया के समय उत्सर्जित मीथेन भी एक अहम ग्रीन हाउस गैस है। यह CO_2 से दुगुनी गति से बढ़ रही है। इन दो गैसों के अलावा नाइट्रस ऑक्साइड भी एक ग्रीन हाउस गैस है। राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान डोना पाउला, गोवा के वैज्ञानिकों ने नेचर पत्रिका में प्रकाशित एक लेख में प्रमाण प्रस्तुत किए हैं कि नदियों के पानी के साथ बहकर आने वाले रासायनिक खाद ने अरब सागर में ऑक्सीजन के विघटन को और बढ़ा दिया है जिससे नाइट्रस ऑक्साइड गैस उत्पन्न हो रही है। और चूंकि खाद्यान्नों की पैदावार बढ़ाने के लिए नाइट्रोजन युक्त रासायनिक खादों का प्रयोग दिनों दिन बढ़ रहा है इसलिए इसके और अधिक बढ़ने की संभावना है।

सी.एफ.सी.-11 व सी.एफ.सी.-12 दोषी गैसों की सूची में आने वाली अन्य दो गैसें हैं। प्रशीतलन (रेफ्रीज़ेशन) में इनका भारी मात्रा में प्रयोग किया जाता है। ये गैसें स्ट्रेटोस्फीयर की ओज़ोन परत खत्म करती जा रही हैं। गौरतलब है कि ओज़ोन सूरज के प्रकाश में पाई जाने वाली हानिकारक पराबैंगनी किरणों को पृथ्वी तक पहुंचने से रोकता है। ओज़ोन को अवरक्त किरणों को सोखने वाली गैस के रूप में भी वर्गीकृत किया गया है। यह गैस कार चलाने और पशुपालन जैसे कई मानवीय क्रियाओं द्वारा ट्रोपोस्फीयर में उत्सर्जित की जाती है। सी.एफ.सी. गैस अन्तर्राष्ट्रीय समझौते (मॉण्ट्रियल संधि) का एक अहम मुद्दा था। यहां तय हुआ था कि अगले 20 सालों में इसकी वृद्धि में कटौती की जाएगी।

जल वाष्प भी अवरक्त विकिरण को सोखने वाली एक सशक्त गैस है। पृथ्वी की सतह की हवा अतिरिक्त गैसों की मौजूदगी के कारण गरम होकर समुद्र से अधिक पानी सोखती है। इससे सतह और ज़्यादा गरम होती जाती है। इस परिदृश्य में ज्वालामुखी के विस्फोट तथा वाष्प की मात्रा का स्थानीय परिस्थितियों के हिसाब से बदलने जैसे कुछ प्राकृतिक तत्वों के कारण अनिश्चितता रहती है। गर्माने के सबसे बेहतर और उन्नत मॉडल

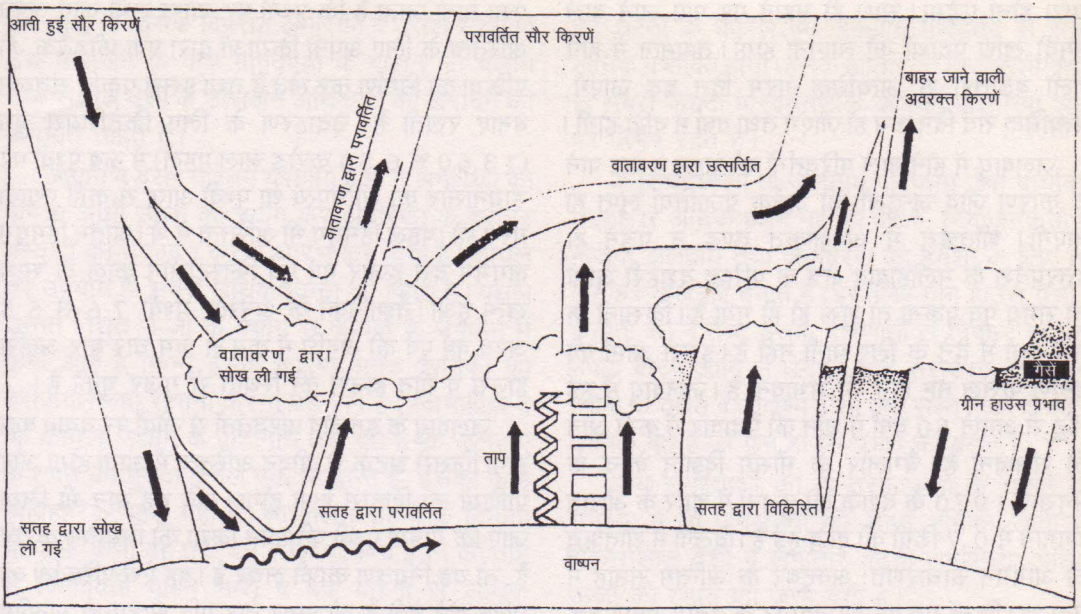

पृथ्वी के विकिरण और ऊर्जा संतुलनः ग्रीन हाउस प्रभाव दरअसल पृथ्वी की ताप को अपने सतह के पास कैद करने की सम्भावना के कारण पैदा होता है। यह सम्भावना हवा में मौजूद कार्बन डाइ आक्साइड और भाप जैसे पदार्थों की वजह से होता है जो सूर्य से आने वाली ऊर्जा को तो प्रवाहित कर देते हैं पर पृथ्वी से उत्सर्जित अवरक्त विकिरणों की ऊर्जा को सोखकर रोक लेते हैं।

तक में मुख्य कमी बादलों की उकेरी भूमिका के बाबत होती है। ऐसा इसलिए कि बादल विकिरण संतुलन को प्रभावित करते हैं। फिर भी उपलब्ध प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानवीय क्रियाएं जलवायु परिवर्तन में एक अहम भूमिका निभाती हैं।

अंतर-शासकीय जलवायु परिवर्तन पैनल (आईपीसीसी) का अनुमान है कि 1990 की तुलना में पृथ्वी का तापमान सन् 2100 तक 2 से 5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है। गर्माहट में वृद्धि की दर 0.2 से 0.5 डिग्री प्रति दशक के मान से आंकी गई है। भूमध्य रेखा की तुलना में उच्च अक्षांश पर तपन में वृद्धि अधिक होगी। उत्तरी गोलार्द्ध जिसमें पृथ्वी का अधिकांश भूभाग आता है दक्षिण गोलार्द्ध (जिसका अधिकांश भाग समुद्र है) की तुलना में अधिक शीघ्रता से गरम होगा।

तपन में इस वृद्धि से जलवायु में इतने परिवर्तन होंगे जो पिछले दस हज़ार वर्षों में नहीं हुए हैं। इन परिवर्तनों से मानव सभ्यता किस प्रकार सामंजस्य बिठाएगी यह कोई नहीं जानता। औसत तापमान में कुछ ही डिग्री के बदलाव से जलवायु बहुत ज़्यादा बदल जाती है। तापमान में वृद्धि से पिछले बर्फ युग की बची खुची बर्फ भी पिघलनी शुरू हो जाएगी। बर्फ के पिघलने और समुद्र की ऊपरी सतह में हुए ऊष्मीय फैलाव से समुद्र का स्तर बढ़ जाएगा। ज्वार-भाटे के मापन के आंकड़े बताते हैं कि पिछली सदी में समुद्र की सतह में 10 से 15 से.मी. की वृद्धि हुई है। आज की तुलना में 21वीं सदी के अंत तक समुद्री सतह में लगभग एक मीटर की वृद्धि होने की संभावना है। ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा को यदि आज के स्तर पर ही सीमित रखा जाता है तो भी समुद्र की सतह में वृद्धि जारी रहेगी। पिछले नवम्बर में हेग में हुई बैठक में वैज्ञानिकों ने स्पष्ट चेतावनी दी कि यदि सभी सहभागी देश बैठक में प्रस्तुत प्रस्तावों को अपने अपने देश में पूर्णतः लागू करते हैं फिर भी सन् 2100 में होने वाली तापमान में 5 डिग्री की वृद्धि को केवल 1/600 अंश से ही कम किया जा सकता है।

जैसे-जैसे समुद्र गहरे होंगे नदी के मुहाने भूमि के अंदर सरकने लगेंगे तथा लोगों को तटबंध बांधने को

बाध्य होना पड़ेगा। साथ ही मुहाने पर पाए जाने वाले समुद्री खाद्य पदार्थों को त्यागना होगा। तापमान में होने वाली बढ़ोत्तरी से अत्यधिक गरम दिन बढ़ जाएंगे, अत्यधिक सर्द दिन कम हो जाएंगे तथा वर्षा में वृद्धि होगी।

जलवायु में होने वाले परिवर्तनों को सहन न कर पाने के कारण जीव जन्तुओं की अनेक प्रजातियां लुप्त हो जाएंगी। शीतऋतु में अपेक्षाकृत ठण्ड न पड़ने से उत्तरप्रदेश के मलीहाबाद क्षेत्र के प्रसिद्ध दशहरी आमों का समय पूर्व पकना तो शुरू हो ही गया है। किसानों के पास वृक्षों में देने के लिए पानी नहीं है। इससे आमों की सम्पूर्ण फसल नष्ट होने की संभावना है। जलवायु में हुई वृद्धि से अगले 50 वर्षों में धान की पैदावार में कमी आने की संभावना है। बैंगलोर के मौसम विज्ञान केन्द्र के अनुसार 1970 के दशक की तुलना में शहर के औसत तापमान में 0.7 डिग्री की वृद्धि हुई है। दिल्ली में शीतऋतु का आगमन साधारणतः अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में होता था। किन्तु गत वर्ष यह नवम्बर के तृतीय सप्ताह तक खिसक गया। गंगा के उद्गम गंगोत्री हिमखण्ड की लंबाई प्रति वर्ष 18 मीटर की दर से कम हो रही है। बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान द्वारा किए गए अध्ययन के अनुसार हिमालय के प्रसिद्ध देवदार वृक्षों के वार्षिक वलय में वृद्धि सर्दियों में तापमान में अपेक्षित गिरावट न आने से हुई है। इस वृद्धि का सम्बंध गंगोत्री हिमखण्ड के ह्रास से ही है। हिम व बर्फ के अन्तर्राष्ट्रीय आयोग ने चेतावनी दी है कि सन् 2035 तक भारत के सभी हिमखण्ड पिघल चुके होंगे।

धरती की गर्माहट में वृद्धि मच्छरों द्वारा फैलने वाली डेंगू व मलेरिया जैसी बीमारियों को फैलाने में मददगार होगी। कर्क रेखा के उत्तर तथा दक्षिण में मलेरिया ने फिर से सिर उठा लिया है। 1990 के दशक में जलवायु परिवर्तन के कारण मनुष्यों में **हेन्टोवायरस** फेफड़ों के सिन्ड्रोम का प्रादुर्भाव हुआ। इस बीमारी का संक्रमण चूहे की एक प्रजाति द्वारा होता है। इस प्रजाति के जीवों के मलमूत्र में पाए जाने वाले कीटाणु मानव शरीर में सांस के ज़रिए प्रवेश करते हैं।

हाल ही के कुछ वर्षों में जेम्स लवलॉक ने 'गाइया' (पृथ्वी की देवी का यूनानी नाम) प्रकल्पना प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार जलवायु तंत्र स्वयं-सुधारक होता है। ऐसा माना जाता है कि पृथ्वी पर व्याप्त सभी जीव अपने अस्तित्व के लिए अपनी क्रियाओं द्वारा एक फीडबैक की प्रक्रिया का निर्माण कर लेते हैं तथा इससे प्रकृति संतुलन बनाए रखती है। उदाहरण के लिए क्रिटेशियस युग (13.60 से 6.50 करोड़ साल पहले) में जब पृथ्वी पर डायनासोर का आधिपत्य था पृथ्वी आज से कहीं ज़्यादा गरम थी। पहले हिमयुग भी अस्तित्व में थे। अंतिम हिमयुग लगभग दस हज़ार वर्ष पूर्व प्लिस्टोसीन काल के साथ खत्म हुआ। वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी 7.6 से 5.5 अरब वर्ष पूर्व की अवधि में कम से कम चार बार आईस हाउस व ग्रीन हाउस की स्थिति से गुज़र चुकी है।

जलवायु के इन तीव्र परिवर्तनों से जीवों पर दबाव बढ़ा होगा जिससे झटके से जीवन अस्तित्व में आया होगा और प्राणियों का विकास हुआ होगा। यदि यह मान भी लिया जाए कि गाइया पृथ्वी की तपन क्रिया को नियंत्रित करती है, तो यह नियंत्रण काफी लचर है। वह ऐसे परिवर्तनों को घटित होने देती है जो अगर तेज़ गति से हुए तो मानवीय सभ्यता को विनाश से नहीं बचाया जा सकता।

कार्बन डाई ऑक्साइड, मीथेन तथा सीएफसी गैसें ही पृथ्वी के तपन के लिए दोषी हैं इस मत से भी सभी लोग सहमत नहीं हैं। फिलिपीन्स में पिनाट्यूबो पर्वत पर सन् 1991 में ज्वालामुखी का विस्फोट हुआ। ग्रीन हाउस के प्रति संशयी व्यक्तियों ने इसे मुद्दा बनाकर कहा कि इस विस्फोट से सल्फेट व एरोसोल की इतनी अधिक मात्रा में उद्भेदन हुआ कि इसके प्रभाव से पृथ्वी की जलवायु में ठण्डक आ सकती है। तापमान स्थानों के हिसाब से बदलता रहता है। शहरीकरण से पृथ्वी के तापमान में बढ़ोत्तरी होती है। तमाम कारकों को ध्यान में रखने के बाद जलवायु परिवर्तन की जानकारी देने वाले इंग्लैण्ड के हेडली सेण्टर ने आई.पी.सी.सी. के अनुमानों से अपनी सहमति व्यक्त की है। इस केन्द्र के प्रमुख जेफ जेनकिन्स का कहना है ''यदि हमें पृथ्वी की गर्माहट को कम से कम करना है तो हमें अगले कुछ दशकों में गैसों के उत्सर्जन में 60 प्रतिशत की कमी का लक्ष्य पाना होगा।''

दुर्भाग्यवश पृथ्वी की गर्माहट का मुद्दा उत्तर व दक्षिण के बीच एक विवाद का विषय बन गया है। जी-77 देश व चीन का मानना था कि औद्योगिक रूप से विकसित देश गैसों के उत्सर्जन के कड़े मानदण्डों के प्रति

वचनबद्ध हों। इसके विपरीत अमेरिका व उसके सहयोगी देश उत्सर्जन के कड़े मानदण्डों के पालन की बजाय विकासशील देशों के उत्सर्जन अधिकारों को खरीदने की अनुमति चाहते हैं।

जापान व दूसरे पश्चिम यूरोपीय देशों ने अमेरिका की अपेक्षा आधी ऊर्जा का प्रयोग कर अमेरिका के बराबर वस्तुओं का उत्पादन करना आरंभ कर दिया है। कोयले का उपयोग ही सबसे अधिक चिन्ता का विषय है। यद्यपि उन्नत विद्युत ऊर्जा के प्रयोग से कोयले के उपयोग में कमी आई है किन्तु इसके कारण अनेक खनिकों को बेरोज़गारी का सामना करना पड़ रहा है। स्वाभाविक है कि कोयला उद्योग के प्रतिनिधि तर्क देते हैं कि जलवायु के तपने का मुद्दा केवल एक सिद्धान्त है, इसका कोई व्यावहारिक पहलू नहीं है। स्वचालित वाहनों के निर्माता भी कभी-कभी यह तर्क देते हैं कि हल्के व ईंधन की दृष्टि से किफायती वाहन भारी व बड़े वाहनों से अधिक खतरनाक हैं। किन्तु सुरक्षा सम्बंधी अभिलेखों में यह बात नहीं उभरती है।

वैसे यह सही है कि सौर फोटो-वोल्टिक सेल जैसे ऊर्जा के नए वैकल्पिक स्त्रोत अभी पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुए हैं किन्तु कोयले द्वारा निर्मित विद्युत के साथ प्रतिस्पर्धा में यह अभी काफी पीछे हैं। सौर ऊष्मीय ऊर्जा का प्रयोग मरुस्थली प्रदेशों में बढ़ता जा रहा है। चेर्नोबिल दुर्घटना के बाद लोग परमाणु ऊर्जा की सुरक्षा के प्रति आशंकित हैं। परमाणु ऊर्जा की लागत में भी लगातार वृद्धि हो रही है। इससे उत्पन्न कूड़े को ठिकाने लगाना तथा ऊर्जा निर्माण के पुराने कल-कारखानों को बन्द करना एक समस्या बन गई है। भारत में परमाणु ऊर्जा की उत्पादन क्षमता ऊर्जा के कुल राष्ट्रीय उत्पादन का मात्र 3 प्रतिशत है। परमाणु फ्यूज़न से प्राप्त ऊर्जा से हम अभी कई दशक दूर हैं।

कुछ लोगों का मानना है कि जलवायु परिवर्तन फायदेमन्द तो होगा लेकिन यह लाभ सभी को समान रूप से नहीं मिलेगा। सामान्यत: विकासशील देशों को जलवायु परिवर्तन को ग्रहण करने में विकसित देशों की अपेक्षा अधिक कठिनाई होगी जबकि इन परिवर्तनों के लिए विकसित देश ही उत्तरदायी हैं। विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था में कृषि का सबसे अधिक योगदान होता है। कृषि पर आधारित अनेक छोटे किसानों की स्थिति गर्म हुई धरती के कारण हुए जलवायु परिवर्तन से सबसे अधिक प्रभावित होगी। इसके अतिरिक्त विकासशील देश ही सबसे ज़्यादा परिवर्तनशील कारकों जैसे वर्षा आदि पर निर्भर रहते हैं।

अनुसंधानकर्ता तो जलवायु परिवर्तन जैसे दीर्घावधि मुद्दों पर अधिक ध्यान नहीं ही देते हैं, नियोजनकर्ता भी मौजूदा जलवायु तथा वातावरण को हमेशा के लिए तय मानकर योजनाएं बनाते हैं। इसीलिए ग्रीन हाउस गैसों में कटौती करने तथा उसके परिणामों से निपटने के लिए उपाय करने आदि से उनका कोई सरोकार नहीं रहता। गरीबी के चलते वे जीवाश्म ईंधन जैसे सस्ते विकल्पों को ही वरीयता देते हैं जो ग्रीन हाउस प्रभाव को बढ़ाते हैं।

अन्य समस्याओं की ही तरह पृथ्वी के गर्माने की समस्या में भी जनसंख्या की अहम भूमिका रहती है। विकासशील देशों में लगातार बढ़ती जनसंख्या अधिक ऊर्जा की खपत को जन्म देती है।

दूसरी ओर एक अमेरिकी नागरिक भारत अथवा चीन के नागरिक की तुलना में 10 से 15 गुना अधिक ऊर्जा का उपयोग करता है। इस प्रकार यदि अमेरीका अपनी जनसंख्या में 1 से 17 लाख की कमी लाता है तो वह भारत अथवा चीन से कहीं अधिक कार्बन डाई ऑक्साइड के उत्सर्जन में कमी ला सकता है। यदि भारत व चीन अपनी जनसंख्या में 1-1 करोड़ की कमी लाते हैं तो भी वे कार्बन डाई ऑक्साइड के उत्सर्जन में इतनी कमी नहीं ला सकते।

पृथ्वी के तपने की समस्या से निपटने के लिए सभी देशों को सघन कार्यवाही करना ज़रूरी है। इनमें भारत व चीन भी शामिल हैं जो अभी तो बहुत ज़्यादा (CO_2) कार्बन डाई ऑक्साइड का उत्सर्जन करते हैं किन्तु भविष्य में इनके अधिक अनियंत्रित होने की संभावना हो सकती है। सी.एफ.सी. गैसों पर नियंत्रण पाने के लिए मॉन्ट्रियल संधि की ही तर्ज़ पर एक कानून के निर्माण हेतु वार्ता की औपचारिक शुरूआत हो चुकी है। इससे इस सम्बंध में आशा की किरण दिखाई दे रही है। बाज़ार में पहुंचने वाले तेल के प्रत्येक बैरल पर थोड़ा कर लगा दिया जाना चाहिए। इस राशि से उन देशों को क्षतिपूर्ति दी जा सकती है जिन पर पृथ्वी के वातावरण को सुरक्षित रखने हेतु सस्ते जीवश्म ईंधन के उपयोग पर पाबंदी लगा दी गई हो। ***(स्त्रोत फीचर्स)***